

प्रातःस्मरणीय मुमुक्षुजीवोंके परम तारणहार, पंचमकालमें  
अध्यात्म अमृतकी वर्षा करनेवाले निष्कारण करुणाशील सौम्यमूर्ति  
पूज्य भाईश्री शशीभाई के समाधिदिन पर उनके चरणोंमें  
कोटी कोटी वंदन



जिन सत्पुरुषोंने जन्म, जरा और मरणका नाश करनेवाला, स्वरूपमें सहज अवस्थान होनेका उपदेश दिया है, उन सत्पुरुषोंको अत्यंत भक्तिसे नमस्कार है। उनकी निष्कारण करुणाकी नित्य प्रति निरंतर स्तुति करनेसे भी आत्मस्वभाव प्रगट होता है। ऐसे सर्व सत्पुरुषोंके चरणारविंद सदा ही हृदयमें स्थापित रहे।

सत्पुरुषोंने सद्गुरुकी जिस भक्तिका निरूपण किया है, वह भक्ति मात्र शिष्यके कल्याणके लिये कही है। जिस भक्तिको प्राप्त होनेसे सद्गुरुके आत्माकी चेष्टामें वृत्ति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होकर अन्य स्वच्छंद मिटे, और सहजमें आत्मबोध हो, ऐसा जानकर जिस भक्तिका निरूपण किया है, उस भक्तिको और उन सत्पुरुषोंको पुनः पुनः त्रिकाल नमस्कार हो।

(श्रीमद् राजचंद्र, पत्रांक-४९३)

# स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२५७, वर्ष-२३, अप्रैल-२०१९

आषाढ शुक्ल १३, गुरुवार, दि. ३०-६-१९६६, योगसार पर  
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-६३-६४, प्रवचन-२२

‘परभाव का त्याग संसारत्याग का कारण है।’

जे परभाव चएवि मुणि अप्पा अप्प मुणंति।  
केवल-णाण-सरुव लइ (लहि?) ते संसार  
मुचंति।।६३।।

ओहोहो..! अकेला मक्खन ही डाला है। जो कोई धर्मात्मा ‘परभावों का त्याग करके...’ विकल्प जो शुभाशुभराग, उस शुभ और अशुभराग को छोड़कर ‘आत्मा का अनुभव करता है...’ देखो! त्यागधर्म की आवश्यकता इसमें बताई है। त्यागधर्म अर्थात् अस विकल्प का त्याग। परभाव विकार पुण्य और पाप दोनों परभाव हैं। शुभराग, वह परभाव है, उसका त्याग (और) स्वरूप का अन्तर ग्रहण.. है न? ‘अप्पा अप्प मुणंति’ आत्मा, आत्मा को जाने। विकारभाव को छोड़कर, भगवान आत्मा, आत्मा को जाने, कहते हैं। ‘वह केवलज्ञानसहित अपने स्वभाव को प्रगट करके संसार से छूट जाते हैं।’ समझ में आया?

‘उसका त्याग करके वीतरागभाव में रमणता करने से संवर और निर्जरा का लाभ होता है।’ लो! इत्यादि बहुत बात की है। यहाँ तो फिर इन्होंने कहा है ‘साधक को पहले तो मिथ्यात्वभाव का त्याग करना चाहिए। उसके लिए बाह्य कारण ऐसे रागी, द्वेषी देव, परिग्रहधारी, आत्मज्ञानरहित साधु और एकान्त कथन करनेवाले शास्त्रों की भक्ति

छोड़ना...’ ऐसा कहते हैं। छोड़ने का आया न? परभाव छोड़ने का.. इसलिए यह डाला है। छोड़ने में पहले कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा छोड़ो, उसकी व्याख्या की, हाँ! रागी-द्वेषी देवों की श्रद्धा छोड़े, परिग्रहधारी और आत्मज्ञानरहित साधु, और आत्मज्ञानरहित उन्हें छोड़े, उनकी श्रद्धा छोड़ दे, एकान्तनय कहनेवाले शास्त्रकी भक्ति छोड़ दे।

‘तीव्र पाप से बचना...’ फिर सात व्यसन का त्याग (करता है)। यह त्याग आया सही न? ‘परभाव चएवि’। ‘द्वचुतरमण, मदिरापान, मांसाहार, चोरी, शिकार, वेश्या व परस्त्री सेवन की रुचि को मन से दूर करे, नियमपूर्वक त्याग न कर सकने पर भी उनसे अरुचि पैदा करे,’ अरुचि पैदा करे। ‘अन्याय सेवन से ग्लानि करे तथा वीतराग सर्वज्ञदेव निर्ग्रन्थ आत्मज्ञानी साधु...’ अब सुलटा लिया। ‘वीतराग सर्वज्ञदेव निर्ग्रन्थ आत्मज्ञानी साधु, अनेकान्त से कहनेवाले शास्त्रों की भक्ति करे। सात तत्त्व को जानकर मनन करे, तब अनन्तानुबन्धी कषाय व मिथ्यात्व भाव का विकार परिणामों से दूर होगा। सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान व स्वरूपाचरण चारित्र का लाभ होगा।’ लो, इसमें इन्होंने दिया, अभी यह विवादित शब्द है।

मुमुक्षु :- नया विवाद खड़ा किया है।

उत्तर :- व्यर्थ में खड़ा किया है। स्वरूपाचरण चौथे

गुणस्थान में नहीं होता। अरे..! यह तो तेरे इकाई बिना की शून्य जैसी बातें हैं। ऐसी बातों से कुछ भी (लाभ) है? स्वरूप है, उसकी दृष्टि हुई और स्वरूप का आचरण तथा स्थिरता न हो तो सामान्य का विशेष क्या प्रगट हुआ? सामान्य को विषय करनेवाली दृष्टि है। सामान्य को विषय किया इसलिए साथ में थोड़ी विशेषता, सामान्य और स्थिरता होती है तो वह स्वरूपाचरण है। आहाहा..! मानो स्व का आश्रय हो जायेगा तो शुभयोग से लाभ (मानना) उड़ जायेगा। अरे भगवान! शुभयोग से कुछ नहीं (होनेवाला है)। छोड़ न, वह स्थूल पर है। शुभयोग छोड़ और स्वभाव का आदर कर तो तुझे अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होगी।

स्वरूपाचरणचारित्र का लाभ... देखो, चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन होने पर परभाव मिथ्यात्वादि का त्याग होकर, अनन्तानुबन्धी का त्याग होकर और स्वरूप की दृष्टि ज्ञान और स्वरूप आचरण का प्रगट होना होता है। यह त्याग और ग्रहण दोनों बातें हैं, फिर आगे बात ली है। अप्रत्याख्यानावरणीय,

प्रत्याख्यानावरणीय, संज्वलन कषाय, नौ कषाय, राग-द्वेषभाव का नाश करता है। अन्तरंग का चौदह प्रकार का भाव परिग्रह छोड़ता है, यह सब छोड़कर एकान्त में ध्यान करता है-ऐसा कहते हैं।

**‘जितने भाव कर्मों का निमित्त होते हैं, वे सब अनित्य हैं, उन सबके प्रति राग छोड़ता है..’** भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु की शरण लेने से, उसका आश्रय लेने पर, उसका ध्यान अनुभव करने से, कर्म के संग से उत्पन्न हुआ विकार, फिर शुभराग दया, दान, व्रत हो या अशुभ हो सब अनित्य है, अनित्य है, क्षणिक है, उपाधि है, उन्हें छोड़े। नित्यानन्द का ध्यान करे और अनित्य राग को छोड़ता है, उसमें **‘परभाव चएवि’** आया

न? परभाव को छोड़े और **‘अप्पा अप्प मुणंति’** उसमें से यह निकल सकता है। क्या कहा? विकारभाव पुण्य-पाप, शुभाशुभ, वह अनित्य है क्योंकि निमित्त के लक्ष्य से हुए क्षणिक (भाव) है। उन्हें छोड़कर **‘अप्पा अप्प मुणंति’** नित्यानन्द भगवान आत्मा को निर्मलानन्द पर्याय से अनुभव करे। समझ में आया? कठिन डाला है, हाँ! संक्षिप्त शब्दों में बहुत रखा है।

**‘औदयिक, क्षायोपशमिक और छूट जानेवाले ऐसे औपशमिक भावों के प्रति विरक्त होकर क्षायिक और पारिणामिक जीवत्वभाव को अपना**

**स्वभाव मानकर एक शुद्ध आत्मा की बारम्बार भावना करता है।’** लो! ठीक। क्या कहते हैं? **‘परभाव चएवि’** शब्द है न? पुण्य-पाप के विकल्प तो श्रद्धा में से छोड़े परन्तु उपशमभाव, क्षयोपशम भाव, और उदय; उदयभाव, क्षयोपशम और उपशम ये तीनों पर्याय छूटने लायक है। स्वभाव का आश्रय करने पर क्षायिक पर्याय प्रगट होती है। पारिणामिकभाव तो



स्वयं है। समझ में आया? आहाहा..!

मानो दूसरे देश में खेलते हों, उसकी यह बातें हैं। दूसरा देश है, दूसरा देश। समझ में आया? ‘हम परदेसी पंखी साधु, आरे... देश के नाहिं रे... हम परदेसी पंखी साधु, आरे... देश के नाहिं रे... आतम अनुभव करीने अमे उड़ी जासु सिद्ध स्वरूपे रे... हम परदेसी पंखी साधु... आरे... देशना नाहिं रे...’ परभाव विकल्प के देश के हम नहीं है। आहाहा..! पुण्य और पाप के भाव के देश का आत्मा नहीं है, हाँ! प्रभु! आहाहा..! यह भगवान अनन्त आनन्द का धाम स्वदेश-स्वधाम उसमें हम जायेंगे और यह हम छोड़ेंगे। आहाहा..! देखो! यह योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त महामुनि जंगल में बसनेवाले!

वन के भाघ-सिंह दहाड़ मारकर बात करते हैं कि मार्ग यह है। समझ में आया? पुण्य-पाप का भाव, अरे..! व्यवहाररत्नत्रय, दया, दान, भक्ति का भाव वह परदेशीभाव है, वह स्वदेश का नहीं। आहाहा..! कान में सच्चा सुनना भी कठिन पड़ गया है, हैं? आहाहा..!

ऐसे परमात्मा स्वयं शुद्ध चिदानन्द का धाम भगवान पड़ा है न! तेरे स्वरूप में तो अनन्त सिद्ध भगवान विराजमान हैं। अनन्त सिद्ध की पर्यायों का पिण्ड तो तू है-ऐसा भगवान जिसकी श्रद्धा-ज्ञान में, अनुभव में आया, कहते हैं उसे क्या बाकी रहा? वह पुण्य-पाप के भाव परदेश भाव, परदेशी भाव है। श्वेताम्बर में परदेशी राजा आता है न? वह परदेशी राजा..। पुण्य-पाप के भाव को माननेवाला आत्मा वह परदेशी है। अकेला पुण्य-पापरहित भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी श्रद्धा-ज्ञानवाला, वह स्वदेश को माननेवाला है। आहाहा..! समझ में आया?

एक पारिणामिकभाव आत्मा का त्रिकाली जीवत्वस्वरूप कारणप्रभु को अपना जानकर और उस ओर झुकाव करके अनुभव करे। कहो, समझ में आया? **‘वही मोक्षमार्ग है और सदा ही आनन्दामृत का पान कराता है।’** वही आत्मा का मोक्षमार्ग है, जिसमें सदा मोक्षमार्ग में अतीन्द्रिय अमृत का पान करनेवाला मोक्षमार्ग है। वहाँ दुःख और जहर, उलझन नहीं है। आहाहा..! समझ में आया? यह घानी में पिलने के काल में, भगवान आत्मा में अन्दर रमणता करता होता है। आहाहा..! समझ में आया? जिसे पर का लक्ष्य छूट गया है और विकल्प का भाव जिसने छोड़ दिया है और स्वभाव की अन्तरक्रीड़ा में रमते अन्दर शरीर पिलता है। आहाहा..! कितने ही साधु हो लवणसमुद्र में उठाकर डाल दे, डुबोवे, ऐसा पैर पकड़कर दुबोवे। शत्रु-देव हो, आहाहा..! अन्दर श्रेणी (लगाकर) स्वरूप में चढ़ गये हैं, उपसर्ग मित गया है, स्वरूप में चढ़ गये हैं, श्रेणी होकर केवलज्ञान (प्रगट होता है)। वह देह गिरे नीचे और स्वयं जाये ऊपर। आत्मा जिसके पास है, उसे अब क्या करना? कहते हैं। आहाहा..! **‘अप्पा अप्प मुणंति’** आत्मा, आत्मा

को जहाँ अनुभव करता है, वहाँ क्या बाकी और कमी होगी? आहाहा..? समझ में आया?

इसके बाद समयसार का श्लोक दिया है। **‘शुद्धभाव में चलनेवाले मोक्षार्थी महात्माओं को इसी सिद्धान्त का सेवन करना चाहिए कि मैं सदा ही एक शुद्ध चैतन्यमय परमज्योतिस्वरूप हूँ।’** यह इसका सार है। मैं तो एक शुद्ध परम चैतन्य ज्योति हूँ। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव स्वयं को शुद्ध चैतन्यमय, ज्योतिमय मानता है। मैं विकल्पवाला और शरीरवाला यह तो ज्ञान करने के लिए दूसरी चीज रह गयी, आदर करने के लिए तो यह एक ही चीज है। ए.. भाई! इस पैसे में सुख (नहीं होगा)? कहते हैं कि वे पैसे कितने? थैलियाँ देखकर उसे उस दिन कितना सुख होगा? बरामदे में रुपये की थैलियाँ! धूल में सुख था? सब आकुलता थी। ओहोहो..! देखता नहीं नजर डालकर, पत्थर और चाँदी के लक्ष्य से देखता है कि यह सब चाँदी के पाट पड़े हैं। देखता है न उन्हें? उश समय रुपये देखना है या नहीं? कि यहाँ आ जाते हैं? केवलज्ञानी देखते हैं, तीन लोक-तीन काल के रुपये, स्वर्ण मोहर सब देखते हैं। भगवान के ज्ञान में सब आता है। आहाहा..! ऐसा चैतन्य रत्नाकर, जिसमें अनन्त रत्न पड़े हों, अब यह तो कब धूल के कंकर कितने हों, संख्यात हों, हैं खरब, निखरब... पहले बड़ा-बड़ा आता था न? प्रारब्ध अन्तिम... क्या कहलाता है? परार्थ खरब, निखरब, अन्तिम, मध्यम परार्थ ऐसा आता था। पहले शब्द आते थे, पाठशाला में पढ़ते तब। लो, उसका आँकाड़ा बड़ा वहाँ तक आया।

यहाँ तो भगवान के अन्दर में तो अनन्त-अनन्त शुद्ध रत्नाकर का समुद्र प्रभु आत्मा है। एक समय का विकार-संसार का लक्ष्य छोड़ दे। भगवान पूर्णानन्द का नाथ का अनुभव करे तो तुझे क्या फल नहीं मिलेगा? समझ में आया? अल्पकाल में सिद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त करेगा।

६४, **‘त्यागी आत्मध्यानी महात्मा ही धन्य हैं।’** अब योगीन्द्रदेव स्वयं प्रमोद में आते हैं। आहाहा..! **धण्णा ते भयवंतं बुह जे परभाव चयंति।**

**लोयालोय-पयासय अप्पा विमल मुणंति॥६४॥**

एक तो पहले आत्मा को लोकालोक का जाननेवाला सिद्ध किया। समझ में आया? लोकालोक को प्रकाश-ऐसा नहीं। 'लोयालोय-पयासय अप्पा विमल मुणंति' समझ में आया? लोकालोक का प्रकाश करनेवाला। यह सूर्य प्रकाशित करता है... सूर्य बहुत पदार्थों को प्रकाशित करता है, यह (ज्ञान) सूर्य, इस सूर्य और दूसरे सब पदार्थोंको प्रकाशित करता है। लोकालोक प्रकाशक 'अप्पा विमल मुणंति' लोकालोक प्रकाशक... प्रकाशक ऐसा शब्द है, हाँ! यह आत्मा, यह सब प्रकाश है, सूर्य है वह प्रकाश है और वह सूर्य इन सबको प्रकाशित करता है कि यह सब है, इन सबको प्रकाशित करनेवाला सूर्य और उसे प्रकाशित करनेवाला प्रकाश है। अर्थात् लोकालोक को प्रकाशित करनेवाला आत्मा है-ऐसा कहते हैं। यह सूर्य तो कितने को प्रकाशित करेगा? समझ में आया? अर्धभाग को (प्रकाशित करता है)। दो सूर्य होकर आते हैं न?

कहते हैं, यह 'लोयालोय-पयासय' समझ में आया? पहले तो आत्मा को सिद्ध किया कि आत्मा अर्थात् क्या? लोकालोक का प्रकाश करनेवाला आत्मा... लोकालोक का प्रकाश करेवाला, वह आत्मा। किसी चीज को करनेवाला नहीं, किसी को छोड़नेवाला नहीं, किसी को ग्रहण करनेवाला नहीं। आहाहा..! एक राग को ग्रहण करना या छोड़ना वह उसके स्वरूप में नहीं है। रजकण को ग्रहण करना (नहीं), वह तो लोकालोक सब है, उसका प्रकाशक है। आहाहा..! समझ में आया?

'जो परभाव का त्याग करता है...' अन्तर में शुभाशुभराग को छोड़ता है और लोकालोक का प्रकाशक भगवान आत्मा को अनुभव करता है। लोकालोक का प्रकाश करनेवाला भगवान तू है। लोकालोक का करनेवाला नहीं, एक रजकण का करनेवाला नहीं, एक राग को रचनेवाला नहीं, व्यवहार विकल्प को रचनेवाला नहीं, परन्तु व्यवहार आदि सब लोकालोक में जाता है, उन सबका प्रकाशक भगवान आत्मा है। आहाहा..!

'वे भगवान, ज्ञानी...' 'बुह' है न? 'बुह'

अर्थात् ज्ञानी महात्मा धन्य है। कहते हैं उन्हें धन्य है। आहाहा..! यह उन्हें धन्य है। उसे धन है और उसे धन्य है। बाकी सब भिखारी और रंक है। भगवान आत्मा लोक और अलोक का प्रकाश (करनेवाला) है। चैतन्यबिम्ब-सूर्य निरालम्बी, राग और शरीर से भिन्न चैतन्यबिम्ब पड़ा है, ऐसा लोकालोक को प्रकाशित करनेवाला, ऐसा जो चैतन्य का अनुभव रागादि विकल्प को छोड़कर इसे अनुभव करे, वे ज्ञानी जगत में धन्य हैं। स्वयं भी कहते हैं, आहाहा..! तेरा अवतार तूने सफल किया, भाई! यह अवतार, अवतार के अभाव के लिये तेरा अवतार है। समझ में आया? हैं? इसलिए धन्य है। अवतार प्रगट करने के लिये अवतार नहीं है। वह अवतार क्या धन्य (कहना)?

जिस अवतार में लक्ष्मी प्राप्त की और धूल प्राप्त की और स्त्री-पुत्र मिले, इसलिए वह अवतार... वह अवतार होगा? बहुत प्राप्त किया, हमारे पिता कुछ नहीं छोड़ गये, हमने बाहुबल से सब इकट्ठा किया। चार भाई थे, हम चारों ने विवाह किया, पढ़े, मकान बनाये, एक-एक को दो-दो लाख का मकान, पाँच-पाँच-दस-दस लाख की पूँजी है। यह तो कम गिनी अपने भाई की अपेक्षा से अपने को इतना तो बहुत कहलाता है। बापा कुछ छोड़ नहीं गये थे। सब हमने बड़ा होकर अपने आप और यह मकान बनाये, हमारी शक्ति प्रमाण यह सब किया। दो-दो लाख के मकान, चार भाईयों के बंगले हैं, अच्छे सगे-सम्बन्धी हैं, लड़की का विवाह अच्छी जगह हुआ है। लड़कों की शादी अच्छी जगह हुई है, और भगवान की कृपा है..। यह भगवान की कृपा होगी?

मुमुक्षु :- बहुत धीमे से और शान्ति से बात करते हैं।

उत्तर :- बात धीमे से करे परन्तु अन्दर गलगलिया (रोमांच) होता है। ए.. भाई!

यह तो कहते हैं, तेरा अवतार धन्य है, हाँ! आहाहा..! जिसे परचीज तो नहीं परन्तु उसका जाननेवाला राग का जाननेवाला, लोकालोक का जाननेवाला, ऐसा चैतन्य सूर्य बिम्ब भगवान जिसे तूने पकड़ा.. आहाहा..! समझ में आया? और विलमं 'मुणंति' ऐसा। ऐसे आत्मा

को लोकालोक के प्रकाशक की शक्तिवाला ऐसा भगवान आत्मा, उसे अनुभव करे, कहते हैं कि हम (मुनि) धन्य... धन्य..! मुनियों को धन्य कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया? तुझे ऐसा धन्य कहते हैं, केवलज्ञान लेने की तेरी तैयारियाँ हो गयीं। केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी... धनतेरस...लो! समझ में आया?

‘आत्मा का स्वरूप निश्चय से परम शुद्ध है...’ (आज) तेरस है। पता है न! ‘ज्ञान उसका मुख्य असाधारण लक्षण है।’ भगवान आत्मा शुद्ध है परन्तु ज्ञान उसका असाधारण लक्षण है। असाधारण अर्थात् दूसरे गुण ऐसे कोई होते नहीं। ‘ज्ञान में ऐसी शक्ति है कि एक ही समय में सर्व लोक के छह द्रव्यों को उनके गुण-पर्यायों सहित तथा अलोक को एक साथ क्रमरहित ज्यों का त्यों जान सकता है।’ ओहोहो..? केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक व्यवस्थित जैसा पड़ा है, वैसा जानता है। अभी इसका विवाद है। केवलज्ञान ऐसा जाने... केवलज्ञानी, वहाँ निमित्त आवे तब ऐसा हो तब भगवान

अनियत को जाने। अरे.. प्रभु! तू क्या कहता है यह? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक जाग उठे.. जिस जगह-जिस समय भूत में, भविष्य में होनेवाली उस जगह वह होगा, वहाँ निमित्त कौन है-सब भगवान के ज्ञान में नियत/निश्चित हो गया है। केवलज्ञान किसे कहते हैं? यह तो (कहे) केवलज्ञानी पहले नियत को नियत जानते हैं, और अनियत जैसा निमित्त आयेगा, वहाँ क्या पर्याय होगी, उस अनियत को अनियत जानते हैं.. अरे..! भगवान तूने सर्वज्ञ को माना ही नहीं। आहाहा..! लोकालोक का प्रकाशक उसमें कौन सी पर्याय बाकी रह गयी कि वह नहीं होगी, यहाँ होगी तब जानेंगे? यहाँ केवलज्ञान हुआ और तीन काल-तीन लोक ऐसा एक साथ जाना है। समझ में आया? ऐसे आत्मा का निर्मल अनुभव करना, ऐसे आत्माओं को, मुनि स्वयं कहते हैं कि प्रमोद और सम्मत्ति, अनुमति देते हुए धन्य कहते हैं। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



### पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी के १०८ वें जन्मजयंति महोत्सव प्रसंग पर सुवर्णपुरी सोनगढ़ में धार्मिक कार्यक्रम

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराण के पात्र ऐसे पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी की १०८ वीं जन्मजयंति उनकी साधनाभूमि सुवर्णपुरी में दि.१३-५-२०१९ से दि.१५-५-२०१९ त्रिदिवसीय धार्मिक कार्यक्रम सहित अत्यंत आनंद उल्लासपूर्वक मनाने का निश्चित किया गया है। यह धार्मिक कार्यक्रम सोनगढ़ स्थित गुरु-गौरव होल में मनाया जायेगा।

इस प्रसंग पर प्रातः पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा (आश्रम में), जिनदर्शन तथा पूजन जिनमंदिर में, पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन स्वाध्याय मंदिर में, तत्पश्चात् पूज्य भाईश्री शशीभाई के द्रव्यदृष्टि प्रकाश ग्रंथ पर गुरुगौरव होल में प्रवचन, दोपहर में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन, बादमें पूज्य सोगानीजी का गुणानुवाद गुरुगौरव होल में, रात्रि में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन और गुरुगौरव होल में भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम सहित मनाया जायेगा। दि.१५-५-२०१९ पूज्य सोगानीजी के जन्मजयंती दिन पर पूज्य भाईश्री के प्रवचन के बाद जन्मवधामणा तथा भक्ति की जायेगी। इस प्रसंग में भारतवर्षीय सभी मुमुक्षु भाई-बहनों को पधारने का हार्दिक निमंत्रण है। आनेवाले मुमुक्षुओं को संख्या सहित अपने आने की जानकारी संस्था के कार्यालय में देने की विनंती।

संपर्क : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१

आयोजक : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, भावनगर



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार  
ग्रंथके ५०५ वचनामृत पर भाववाही  
प्रवचन, दि.७-४-१९८४, प्रवचन  
क्रमांक-२९२ (विषय : भेदज्ञान)

प्रश्न :- राग और आत्माकी सूक्ष्म-संधि दिखती नहीं, अन्य विचार आया करते हैं, तो प्रज्ञाछैनी कैसे मारें?

उत्तर :- स्वयं उलटा पुरुषार्थ करता है, इसीलिए अन्य विचार आया करते हैं। पुरुषार्थ करके उपयोगको स्वभाव-सन्मुख सूक्ष्म करे तो आत्मा व बंधकी संधि दिखे तथा भिन्नता की जा सके। ५०५।

५०५ चलता है। प्रश्नकारने यह प्रश्न किया है कि हमको जहाँ 'राग और आत्माकी...' राग और ज्ञानकी संधि दिखती नहीं, वहाँ अंतरंगमें भेदज्ञान करनेके लिये प्रज्ञाका उपयोग कैसे करना? यह प्रश्न है। प्रज्ञासे आत्माको ग्रहण करना, ऐसा समयसारके सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारमें गाथा है। रागसे भिन्न करना और राग एवं ज्ञानके बीच भिन्न करनेरूप प्रक्रिया वह प्रज्ञाका कार्य है। यहाँ प्रज्ञाको छैनीकी उपमा दी है। धारदार साधन है अर्थात् यहाँ सूक्ष्म ज्ञान है, वह कार्य कैसे करना? अंतरंगमें आत्माका ऐसा परमार्थभूत कार्य कैसे करना? यह प्रश्न यहाँ है। इसलिये बहुत मुद्देका प्रश्न है। उसका उत्तर कहते हैं। थोड़ा चल गया है। फिरसे लेते हैं।

'स्वयं उलटा पुरुषार्थ करता है, इसीलिए अन्य विचार आया करते हैं।' क्या कहते हैं? 'स्वयं उलटा पुरुषार्थ करता है,...' इसीलिये तत्त्वका विचार करते हुए भी 'अन्य विचार आया करते हैं।' अथवा अंतरंगमें भेदज्ञान करनेका कार्य होनेके बदले कुछ न कुछ विकल्प, विचार चलते रहते हैं। क्या कहना है? कि अंतरंगमें भेदज्ञान होनेके बदले मात्र विचार और विकल्प ही चलते हैं, उसका

कारण क्या? उसका कारण स्वयंका उलटा पुरुषार्थ है।

पुरुषार्थके विषयमें कोई भूल न करे इसलिये आगे एक वचनामृतमें स्पष्टता आ गयी है। किसीने वहाँ ऐसा प्रश्न किया है कि हमारा पुरुषार्थ कम है इसलिये कार्य नहीं होता है या उलटा है इसलिये कार्य नहीं होता है? क्योंकि शास्त्र आदिका अध्ययन और आत्मस्वरूपका चिंतवन, मनन ऐसा करनेवालेको ऐसा लगता है कि मैं पुरुषार्थ तो करता हूँ, परन्तु मेरा पुरुषार्थ कम पड़ता है इसलिये कार्य नहीं होता है, ऐसा कुछ लगता है। उसको स्पष्ट करते हैं कि पुरुषार्थ उलटा है। पुरुषार्थ कम है यह बात नहीं है, अपितु यहाँ उलटा पुरुषार्थ है।

जब तक आत्माका यथार्थ निर्णय नहीं हुआ है, आत्माका यथार्थ निर्णय होकर लक्ष्य नहीं बाँधा है, स्वरूपका निश्चय नहीं हुआ है—पहिचान नहीं हुई है, तब तक पुरुषार्थ कम है, वह बात नहीं है, परन्तु पुरुषार्थ उलटा है यह बात है। एक-एक शब्द है वह समझपूर्वक है। 'स्वयं उलटा पुरुषार्थ करता है...' उलटा पुरुषार्थ माने क्या? यहाँ तो स्वाध्याय करता है, व्यापारसे निवृत्ति ली है।

मुमुक्षु :- रोज मंदिर आते हैं।

पूज्य भाईश्री :— मंदिरमें आकर पूजा, भक्ति, स्वाध्याय करता है, पुनः घर पर शास्त्र अध्ययन, चिंतवन, स्वरूपका चिंतवन इत्यादि करता है। उसमें पुरुषार्थ उलटा कहाँ हुआ? यह तो तत्त्वज्ञानका ही अभ्यास है।

कहते हैं कि जो बहिर्मुख दिशामें परिणाम उपरका जोर, परिणामको सुधारनेका प्रयोजन होने पर भी परिणाम उपरका जोर कार्यगत नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। परिणाम उपरका जोर है वह उलटा पुरुषार्थ है। विकल्प उपरका जोर वह उलटा पुरुषार्थ है। विकल्पमें आगे बढ़ना वह उलटा पुरुषार्थ है। और परलक्ष्यी शास्त्र अध्ययनके ज्ञानमें आगे बढ़ना वह सब उलटा पुरुषार्थ है। क्योंकि दिशा विपरीत है। उलटे-सुलटे पुरुषार्थमें दिशाके साथ सम्बन्ध है। पुरुषार्थ तो पुरुषार्थ ही है। मात्र जो बहिर्मुख दिशा है वह उलटे पुरुषार्थकी स्थिति है और अंतर्मुख जो दिशा है वह सुलटे पुरुषार्थकी स्थिति है। इसप्रकार पुरुषार्थमें दोमें-से एक प्रकार होता है, उसमें कभी कोई तीसरा प्रकार होता नहीं।

अतः यहाँ ऐसा कहते हैं कि स्वयं बाह्य दिशा, अंतरंग दिशा छोड़कर बाह्य दिशा तरफके जोरमें है, पुरुषार्थ करता है अर्थात् जोरमें है—वेगमें है, इसलिये उसको अन्य-अन्य विचार आते रहते हैं। दूसरे विचार आनेका यह कारण है। ऐसा कहना है।

**‘पुरुषार्थ करके उपयोगको स्वभाव-सन्मुख सूक्ष्म करे...’** अब, यह पुरुषार्थ कब हो? इसलिये कल अपने २१० नंबरका वचनामृत लिया था। २१० फिरसे लेते हैं। **‘पुरुषार्थ करके...’** क्योंकि यहाँ बात एकदम संक्षेप करके ली है। तीन पंक्तिमें तो उत्तर दे दिया है। इतनी संक्षेपमें बात आयी है।

**‘प्रथम निज स्वभाव...’** निज स्वभाव अर्थात् यह द्रव्य स्वभाव, **‘श्रद्धामें, ज्ञानमें, रुचिमें और लक्ष्यमें आये...’** प्रथम अर्थात् सम्यग्दर्शन पूर्व। वह नीचेकी बातसे स्पष्ट होता है। प्रथम अर्थात् यहाँ सम्यग्दर्शन होने पूर्वकी बात है, वह नीचे स्पष्ट करते

हैं। इसलिये प्रथमका अर्थ ऐसा करना।

सम्यग्दर्शन होने पूर्व उसके ज्ञानमें, उसके लक्ष्यमें आना चाहिये। यदि ज्ञानमें पहिचान हो—प्रतिभास हो तो ज्ञानमें उसका लक्ष्य बँधे। लक्ष्य बाँधनेके समय ही अनन्त गुणकी रुचि अनन्य भावसे शुरू हो, उत्पन्न हो उसको वहाँ श्रद्धामें आया ऐसा कहनेमें आता है। अभी यहाँ निर्विकल्प प्रतीतिकी बात नहीं है। परन्तु विश्वास आ गया। वह ज्ञानकी ही पर्याय है। वैसे तो यह सब ज्ञानकी पर्याय है—श्रद्धा, ज्ञान, रुचि और लक्ष्य। यहाँ सब ज्ञानकी पर्याय है। वह पंचाध्यायीमें लिया है। पंचाध्यायीमें ऐसे शब्द है।

पंचाध्यायी उत्तरार्ध। वहाँ सम्यग्दर्शन पूर्वकी बात चली है। वहाँ स्पष्ट शब्दोंमें लिया है। श्रद्धा, रुचि, प्रतीति, विश्वास ऐसे सब शब्द लिये हैं। वहाँ फिर गुरुदेवको उस सम्बन्धित प्रश्न पूछा था कि ऐसे शब्द यहाँ है और वह सब ज्ञानकी पर्याय है ऐसा लिखा है, तो ऐसा क्यों है? बहुत स्पष्ट लिखा है कि ये सब यहाँ ज्ञानकी पर्याय है। ऐसा क्यों है? तो कहा कि, वहाँ सम्यग्दर्शन पूर्वकी बात है और वहाँ ज्ञानप्रधानतासे परिणामन चलता है। इसलिये वह ज्ञान स्वरूपकी पहिचान होनेपर, ज्ञानमें पहिचान होने पर, ज्ञानमें लक्ष्य बँधता होनेसे ज्ञानमें विश्वास आया, ज्ञानमें रुचि उत्पन्न हुई, ज्ञानके विषयमें रुचि उत्पन्न हुई। इसलिये वह सब ज्ञानकी पर्याय है, ऐसा वहाँ कहा है।

गुरुदेवश्रीका तो अध्ययन था। यह तो १८०० गाथाका ग्रंथ है। पंचाध्यायीके दोनों भाग मिलाकर करीब १७००से अधिक गाथा है। यह उत्तरार्ध है न, ११००-१२०० गाथा तो इसीमें है। ११४० तो इसमें है, ७००के उपर तो पूर्वार्धमें है। करीब १८०० गाथाका ग्रंथ है। परन्तु इस जगह यह प्रश्न है, वहाँ ऐसा क्यों है, यह ख्यालमें है। अनेक ग्रंथ पढे हैं। कितने ही ग्रंथ पढे हैं कि पंचाध्यायीमें इस जगह ऐसा क्यों लिखा है? हाँ, वहाँ ऐसा लिखा है, वह ख्यालमें है। वहाँ सम्यग्दर्शन होने पूर्वका वहाँ प्रकरण चलता है, ऐसा कहकर बात ली है। इसलिये वह



पर्याय उसकी है। ४०० पहलेकी गाथा होनी चाहिये।

यहाँ ऐसे शब्द लिये हैं। 'प्रथम...' अर्थात् सम्यग्दर्शन पूर्व। ऐसे। श्रद्धामें, ज्ञानमें, रुचिमें आना चाहिये। यहाँ 'यदि' शब्द अध्याहार है। यदि प्रथम ऐसा हुआ हो तो। तो लिया है न? इसलिये 'यदि'के साथ सम्बन्ध रखता है। **'इसका वीर्य स्वभाव-सन्मुख स्फुरित होता रहे।'** यहाँ-से दिशा बदली। **'यह सम्यग्दर्शनकी पूर्वभूमिका है...'** सम्यक् होने पूर्व यहाँ-से दिशा बदली। जिसको सम्यक् सन्मुखकी दशा कहनेमें आती है। तो प्रथम उसे पुरुषार्थकी स्फुरणा, पुरुषार्थ शुरू होनेका जो कार्य है, कि जिस पुरुषार्थके सद्भावमें भेदज्ञान हो। दिशा ज्ञानकी बदले और दिशा पुरुषार्थकी बदले और भेदज्ञान अंतरंगमें हो, ऐसा कार्य पुरुषार्थ करके अर्थात् पहिचानपूर्वक पुरुषार्थ करके, आत्माके लक्ष्यपूर्वक पुरुषार्थ करके, स्वभाव सन्मुख (हो), जिस स्वभावकी ज्ञानमें पहिचान हुई है, जिस स्वभावकी पहिचान होकर लक्षमें रह गया है, उसके सन्मुख उपयोग सूक्ष्म हो अर्थात् उस स्वभावको स्वपने-अपनेरूप ज्ञानसे—उपयोगसे ग्रहण करनेमें आये तो आत्मा और बंधकी संधि दिखती है। देखिये! स्वको जानने पर पर ज्ञात होता है यहाँ।

फिरसे। बहुत अच्छा विषय है। थोड़ा सूक्ष्म विषय है, लेकिन बहुत मुद्देका विषय है। **'पुरुषार्थ करके...'** स्वसन्मुख पुरुषार्थकी बात सर्वप्रथम है। पुरुषार्थ स्वसन्मुखका न हो, निश्चयबल न हो, ज्ञानबल न हो तो यह कार्य नहीं होगा। उस पुरुषार्थके कालमें स्वभावका लक्ष्य है इसलिये उस स्वभाव सन्मुख उपयोगको सूक्ष्म करे। यहाँ उपयोग सूक्ष्म होता है। क्योंकि स्वभाव है वह स्वयं स्वरूपसे ही सूक्ष्म है। सामर्थ्यरूप तत्त्व है न। दियासलाईमें रही अग्नि स्वयं स्वरूपसे ही अग्निस्वरूपसे सूक्ष्म है। वह कोई अग्रिकी ज्वाला नहीं है कि स्थूल उपयोगसे भी जाननेमें आये। लेकिन उस अग्रिको नक्की करनेके लिये उसको उपयोगको सूक्ष्म करना पड़े कि इसमें अग्रिका सद्भाव

है। शक्तिरूपसे अग्रिका सद्भाव है। उसे जाननेके लिये उसका उपयोग तथा प्रकारसे सूक्ष्म होता है।

तो यहाँ अनन्त, अनन्त, अनन्त ज्ञानका जो सामर्थ्य, अनन्त सुखका जो सामर्थ्य, ऐसा अनन्त गुणका जो सामर्थ्यरूप स्वभाव है, उस स्वभाव सन्मुख उपयोगको सूक्ष्म करे। अर्थात् उपयोगमें स्वभावको ग्रहण करे कि यह मेरा रूप है, मैं ऐसा हूँ। तो अकेला आत्मा नहीं दिखेगा उसको, स्वको जानते हुए पर अर्थात् रागादि भाव जो बंधभाव है, उसकी संधिके साथ उसकी जो मौजूदगी है, उसकी संधि तुझे दिखेगी। संधि दिखेगी इसलिये दोनों भिन्न-भिन्न है ऐसा दिखेगा। साथ-साथ है, बगल-बगलमें है, एक ही पर्यायमें ज्ञान है और एक ही पर्यायमें राग है। फिर भी ज्ञान सो राग नहीं है और राग सो ज्ञान नहीं है। आत्माकी दोनों अवस्था होने पर भी दोनोंमें एकमें स्वभाव है और एकमें विभाव है, ऐसी दोनोंकी भिन्नता संधिके द्वारा दिखाई देगी। अन्यथा एकमें, रागमें स्वयं एकमेक हो गया है ऐसा अनुभव होता है, उसके बदले राग भिन्न और ज्ञान भिन्न, इसप्रकार दोनोंको भिन्न कर सकेगा।

इसप्रकार पुरुषार्थसे स्वभाव सन्मुख होकर अन्दरसे धैर्यसे उपयोगको सूक्ष्म करके अन्दर उतारते, उतारते, उतारते उसे भेदज्ञानसे भिन्न किया जा सकता है। और ऐसी भिन्नता करनी वही स्वानुभवकी पूर्व प्रक्रिया है। ऐसी स्वानुभूति होने पूर्व नियमबद्ध क्रिया होती है। दूसरी कोई अंतरंग क्रिया या दूसरी कोई बहिरंग क्रियासे स्वानुभूति पर्यंत पहुँचा नहीं जाता।

जिसको स्वानुभव करना है उसको इस विधिसे होगा, अन्य कोई प्रकारसे नहीं होगा। इस विषयमें समझनमें तो कोई भ्रम नहीं रहना चाहिये, अन्यथा घोटाला होगा और पता लगेगा नहीं। विषयको, ऐसा अध्यात्मकी गहराईमें रहे विषयको गुरुदेवश्रीने खोलकर एकदम स्पष्टरूपसे रख दिया है, स्पष्ट कर दिया है, जाहिर करके रख दिया है।

जैसे कोई अच्छी चीज बाज़ारके चौकमें लटकाकर दिखानेमें आये कि पूरे गाँवको देखना हो तो देखो, कोहिनूर हीरा ऐसा है। वैसे यहाँ ज्ञानियोंके हृदयमें रही जो भेदज्ञानकी अंतरंग क्रिया, उसको खोलकर रख दी है, चौकमें। इस विधिसे अनुभव होगा, अन्य कोई विधिसे अनुभव नहीं होगा। कल चल गया था।

मुमुक्षु :— एक पर्यायमें ज्ञान और राग दो है, ऐसा कैसे है?

पूज्य भाईश्री :— एक पर्यायमें माने आत्माकी एक पर्यायमें अनन्त गुणकी पर्याय है। अनन्त गुण परिणामते हैं न? तो आत्माकी एक समयकी पर्यायमें अनन्त गुणोंकी पर्याय है, इसलिये अनन्त पर्याय है। जहाँ-जहाँ ज्ञान है, वहाँ-वहाँ अनन्त पर्याय है। एक ज्ञानगुणकी और बाकी अनन्त गुणकी। २२ नंबरका वचनमृत देखो। गुरुदेवके सब शब्दोंका आधार है।

मुमुक्षु :—

पूज्य भाईश्री :— एक पर्याय कहा, वहाँ आत्माकी एक पर्याय और अनेक पर्याय कहा वहाँ गुणोंकी अनेक पर्याय। एकमें ही अनेक है। म

मुमुक्षु :— ..

पूज्य भाईश्री :— राग है वह चारित्रगुणकी पर्याय है और ज्ञान है वह ज्ञानगुणकी पर्याय है। उसमें गुणभेद है।

मुमुक्षु :— ..

पूज्य भाईश्री :— हाँ, एक द्रव्यमें है, एक आत्मामें है इसलिये एक पर्यायसे लिया। यहाँ निश्चय कैसे करना वह बात है, अनुसंधानरूपसे। क्योंकि पुरुषार्थ तो निश्चय करने पर उत्पन्न होता है न? दिशा बदलती है।

यहाँ निश्चय कैसे करना वह बात ली है। **‘जाणनपर्याय और जाणनगुण—ऐसे लक्षण द्वारा आत्मा जाना जा सकता है।’** यहाँ जाना जा सकता है अर्थात् पहचाना जाता है। **‘यह एक ही**

**उपाय है...’** पहिचाननेका—निश्चय करनेका वह एक ही उपाय है। **‘अन्य कोई उपाय नहीं। जहाँ-जहाँ जाननपर्याय है, वहाँ-वहाँ अनन्त पर्याय हैं...’** है? **‘जहाँ-जहाँ जाननपर्याय है, वहाँ-वहाँ अनन्त पर्याय हैं और जहाँ-जहाँ जाननगुण है वहाँ-वहाँ अनन्त गुण हैं और वही आत्मा है...’** वह सब मिलकर आत्मा है। एक गुण वह आत्मा नहीं है, एक पर्याय वह आत्मा नहीं है। एक ज्ञानगुण वह आत्मा नहीं है, एक ज्ञानकी पर्याय वह आत्मा नहीं है। परन्तु वहाँ रही अनन्त गुणकी पर्याय और वहाँ रहे अनन्त गुण वह आत्मा है, **‘ऐसा निश्चय करना चाहिये।’** निर्भ्रांत दर्शनमें ये दोनों वचनमृत लिये हैं, दोनोंका आधार लिया है।

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— नहीं, यहाँ यह प्रमाणका विषय हुआ। क्योंकि यहाँ पर्याय और गुण सब ले लिया। अनन्त पर्याय भी ली और अनन्त गुण भी लिये। अतः प्रमाणका विषय हुआ। परन्तु प्रमाणमें सामान्य है वह समाविष्ट है, प्रमाणमें सामान्य आ जाता है। सामान्य कैसा और विशेष कैसा, इन दोनोंका स्पष्ट ज्ञान सो प्रमाणज्ञान है। यहाँ प्रमाणका विषय है, निश्चयका नहीं। यहाँ जो परिभाषा चली है उसमें। लेकिन जो निर्णयका जो विषय है, पर्यायका तो परिचय है। जीवको पर्यायोंका व्यक्त अनुभव होनेसे, प्रगट होनेसे उसका परिचय है। एक सामान्यको उसने अनादिसे पहिचाना नहीं है। इसलिये सामान्यकी पहिचान होती है उस वक्त सामान्य, विशेष दोनोंका ज्ञान हो जाता है, निश्चय हो जाता है।

पहिचानमें निश्चय सो मैं, ऐसा होता है उसका कारण क्या है? कि वह त्रिकाली है। वह अपना असली नित्य स्वरूप है कि जो पलटता नहीं, बदलता नहीं, फेरफार रहित रहता है और दूसरा अंग है वह बदलता रहता है, ऐसा उसका ज्ञान रहता है। ऐसे। और यही आश्रय करने योग्य है, ऐसे ही अपने मूल

स्वरूपसे स्वयं अनजाना था, जो अपनी गुणसंपत्ति पड़ी है वह इस जगह पड़ी है। अवस्थाएँ तो क्षण-क्षणमें होती है, उसमें विकृत-अविकृत दोनों प्रकारकी होती है और वह दोनों प्रकार क्षणिक है। मूल वस्तु तो यह है। इसप्रकार उसे, जो अनादिसे जो निज स्वरूपसे अनभिज्ञ था वह निश्चयमें आता है, ऐसा कहनेमें आता है। लेकिन जब वह निश्चयमें आता है तब उसको ज्ञान तो पूरे आत्माका हो जाता है। साथमें पर्यायका ज्ञान न हो तो निश्चयाभास होनेमें देर नहीं लगती।

वहाँ उसको ख्याल है कि अनादिसे विपरीत पुरुषार्थ था, अनादिसे मेरा श्रद्धान भी विपरीत था, अनादिसे मेरा ज्ञान भी विपरीत था, मेरा आचरण भी विपरीत था। इन चारों मुख्य प्रकार मेरे विपरीत थे। उसको अब जैसा परिपूर्ण स्वरूप है वैसा ही, परिपूर्ण स्वरूपमें अनंत पुरुषार्थ है, अनंत ज्ञान है, अनंत दर्शन है, अनंत स्थिरतारूप चारित्र और सुख है। सुख भी चारित्रमें जाता है, अनंत चतुष्टयमें। वैसी ही मेरी अवस्था हो जानी चाहिये। जैसा द्रव्य है, जैसा मैं हूँ, द्रव्य है अर्थात् जैसा मैं हूँ, वैसी ही बराबर अवस्था न हो तब तक वह क्षति अवस्था अंगमें ऐसा उसे बराबर ख्यालमें रहता है। इसलिये

साधक कभी भी निश्चयके बहुत जोरमें होने पर भी, निश्चयके अत्यंत जोरमें होने पर भी, अवस्थाके विषयमें कभी भूला नहीं पड़ता अथवा भूल नहीं करता। उसकी भूल नहीं होती। क्योंकि उसकी समझमें पूरा आत्मा कैसा है वह समझके बाहर नहीं है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- सामान्य अर्थात् अनंत गुण संयुक्त। परन्तु अनंत गुणका भेद वह विशेष है। अनंत गुणका एकरूप वह सामान्य है। इसलिये सामान्यमें अनंत गुण समाविष्ट होने पर भी, यदि अनंतगुण विशिष्ट सामान्य ऐसा लक्ष्यमें आये तो वहाँ सामान्य लक्ष्यमें नहीं आया है, विशेष लक्ष्यमें आया है। ऐसा है।

क्योंकि भेदमें अभेदका अवलम्बन नहीं है। भेदके अवलम्बनमें अभेदका अवलम्बन नहीं है और अभेदके अवलम्बनमें भेदका अवलम्बन नहीं है। ज्ञान भेदाभेद दोनोंका होता है। अभेदके अवलम्बनवालेको भेदाभेद दोनोंका ज्ञान होता है। उसमें भेद क्या है उसका ज्ञान उसको नहीं है ऐसा नहीं है। अनंत गुणकी अनंत पर्यायें क्या है, अभेद अवलम्बन लेनेवालेको वह मालूम नहीं हो, ऐसा नहीं है। फिर भी उसको वह गौण करता है। गुण-पर्यायके भेदोंको गौण कर देता है। वह भेदज्ञानका विषय हुआ।

### स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७९०४८६८

### प्रकाशन

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखित चिंतनकणिकाओंका पुस्तक 'अनुभव संजीवनी' गुजराती तथा 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' (गुजराती तथा हिन्दी) पुनः प्रकाशनार्थ प्रेस पर भेजे गये हैं। जिनकी मुमुक्षुभाई नोंध ले।



पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा  
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

(३४)

कलकत्ता

३०-१२-१९६२

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

**धर्मस्नेही शुद्धात्म सत्कार।**

आपका ता.२४-१२ का पत्र मिला।

आपने वांचन-विचारणा वास्ते लिखा सो त्रिकाली अखण्ड ज्ञानानंद स्वभावमें अस्तित्वरूपी श्रद्धाकी यथार्थ व्यापकता निरंतर कायम रहे, जहाँ के अनुभवमें परिणाम मात्रके अकर्तापनेका सहज अनुभव होता रहे। परिणामका कर्ता परिणाम अंश है, 'मैं' त्रिकाली अंश नहीं।

इस प्रकारके एक ही समयमें परिणामका कर्ता व अकर्तापनेके अनुभवकी वृद्धि होते-होते पूर्ण ज्ञानका सहज ही अनुभव होगा, यही वांचन व विचारणा है।

आशा है आप भी आत्मस्वास्थ्य सहज वृद्धि करते रहेंगे। यहाँ योग्य कार्य लिखें।

- धर्मस्नेही सोगानी

(३५)

कलकत्ता

२१-१-१९६३

**आदरणीय श्री... सादर जयजिनेन्द्र।**

आशा है आप वहाँ कुशल होंगे। कुछ दिनों पहले आपका कार्ड यथासमय मिला था। आशा है अध्ययन आदि चल रहा होगा। Retired life में पहले के मुकाबिले मानसिक बोझ हल्का महसूस करते होंगे। सोनगढ़ की ओर जाने का भी प्रोग्राम कब है? धार्मिक ग्रंथों में किन-किन ग्रंथों का स्वाध्याय चल रहा है?

ज्ञानभण्डार आत्मामेंसे ज्ञान उघड़ता रहता है, शास्त्रोंसे नहीं; यह अलौकिक सिद्धान्त विचारणीय है। उत्तर क्षणमें क्या परिणाम होगा, उसका वर्तमान क्षणमें हमें ज्ञान नहीं, तो भविष्यके लिये क्यों व्यर्थकी कल्पना? परिणामके अलावा शरीरादिककी क्रियामें तो हमारा कोई कर्तृत्व है ही नहीं। तो फिर इनके आश्रित विभावपरिणामोंका व्यर्थ क्यों बोझ लादा जाये? उद्देश्यका निर्णय करना सहज परन्तु उसकी प्राप्तिमें समय अधिक लगता है। यथार्थ निर्णयके बाद ही यथार्थकी प्राप्ति होती है। अनुभूति ही यथार्थ निर्णयकी निःशंकता बता सकती है। चूँकि आपका समय अब अध्यात्म की तरफ अधिक लगेगा अतः चंद बातें ऊपर सहज ही लिखी गई हैं।

आगे का प्रोग्राम लिखें।

शुभैषी

निहालचंद्र सोगानी

(३६)

कलकत्ता

२७-२-१९६३

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... धर्मस्नेह।

मालूम होता है कारणवशात् निहालभाई के क्षणिक व्यवहार से विरक्ति हो गई है। विरक्ति तो सदैव उपादेय ही है व सहज विरक्ति मुमुक्षुओं का ध्येय भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री की आँख में 'नीडलींग' की आवश्यकता नहीं रही, जानकर आनंद हुआ। वह पूज्यश्री का फाल्गुन सुद ६ से तीन माह वास्ते सौराष्ट्र में विहार होगा, जाना। पुण्ययोग होनेसे उनके दर्शन, प्रवचन का पुनः लाभ मिल सकेगा।

आपकी दी हुई 'बनारसी विलास' पुस्तक का वांचन चल रहा है। लिखा है :-

‘एक निगोद शरीर में ऐते जीव बखान;

तीन कालके सिद्ध सब एक अंश परिमान।’

‘सो पिण्ड निगोद अनंतरास, जियरुप अनंतानंत भास;

भर रहे लोक नभ में सदीव, ज्यों घड़ा मांहि भर रहै धीवा।’

केवलीगम्य यह अनंतता साधक के अनुमानगम्य ज्ञान में प्रत्यक्षवत् है। निष्कम्प गंभीर ध्रुवस्वभाव आश्रये सहज ऊण्डे-ऊण्डे उतरते-उतरते यह ज्ञान हम सब को प्रत्यक्ष होवे, यह ही भावना।

धर्मस्नेही

निहालभाई



(३७)

कलकत्ता

११-३-१९६३

श्री... सादर जयजिनेन्द्र।

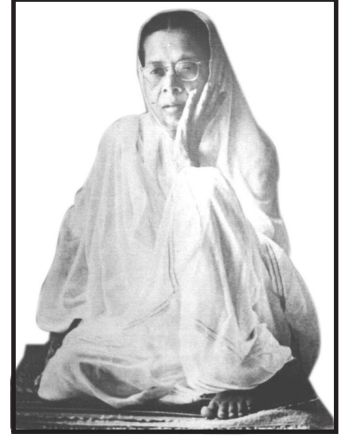
पत्र आपका मिला था...। 'ज्ञान-ज्ञेय स्वभाव' पुस्तक अच्छी है। अखण्ड त्रिकाली ज्ञानस्वभाव को ज्ञेय बनाकर, इस आश्रय एकाग्र हुआ ज्ञानपरिणाम, विभावअंश से भिन्न रहता हुआ, विभाव को परज्ञेय की तरह जानता देखता है-यह ही भेदज्ञान है। साधक को एक ही समय में, एक ही परिणाम में दोनों प्रकार का भिन्न-भिन्न अनुभव होता है व अनाकुल ज्ञानभाव का आकुलित विभावअंश से पृथक् स्वाद का प्रत्यक्ष अंतर भासित होता है।...

सोनगढ़ से अभी गुरुदेव राजकोट गये हुए हैं। कमसे कम एक माह तक आप उनके नज़दीक रहने का प्रोग्राम बना लें तो अत्यधिक सार्थक होगा।

शुभैषी

निहालचंद्र

## पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा मंगल वाणी-सी.डी.१ B



**प्रश्न :-** माताजी! एक प्रश्न है कि दृष्टि के विषयभूत ज्ञायक आत्मा का आश्रय करके पर्याय में चिन्मात्र अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय तीनोंसे एक ज्ञानमात्र आत्मा ऐसे अभेद आत्मा का जो अनुभव हुआ, जिसमें राग भी नहीं है और भेद भी नहीं है। कर्ता-कर्म का भेद भी छूट गया और राग भी नहीं है। ऐसे आत्मा का जो अनुभव हुआ वह आत्मा शुद्धनय का विषय गिना जाय?

**समाधान :-** शुद्धनय का विषय है उसमें भेद नहीं पड़ता। द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे भेद नहीं पड़ते। वह विषय शुद्धनय का है। उसका अनुभव हुआ, स्वानुभूति हुई, जो भी कहो वह सब शुद्धनय का विषय है।

**प्रश्न :-** शुद्धनय का विषय है तो वह आश्रय करनेयोग्य कहा जाय अथवा दृष्टि का विषय और इसमें कोई अन्तर है की एक ही है?

**समाधान :-** जो दृष्टि का विषय सविकल्प दशा में था, वही दृष्टि का विषय स्वानुभूति में है। उसमें विकल्प छूट गये हैं। उसका विषय वही है, विषय नहीं बदला। सविकल्पदशा में जिस द्रव्य को विषय किया था, वही विषय उसे स्वानुभूति में है। उसका ध्येय, उसकी जो दृष्टि है वह तो वही है, लेकिन उसका वेदन स्वानुभूति में, निर्विकल्परूपसे स्वानुभूति का वेदन होता है। और वह वेदन उसे ज्ञान में सब ग्रहण होता है। उसके गुण, उसकी पर्याय, उसके ज्ञान में सबकुछ ज्ञात होता है। उसका वेदन होता है। विषय एक मुख्यरूपसे द्रव्य आश्रय है उसका है। सब उसमें ज्ञात होता है। विकल्प नहीं है। सहजरूपसे जो मुख्य है वह मुख्य ही है और जो सबकुछ वेदन में है वह वैसे ही है। वह निर्विकल्परूपसे है।

**प्रश्न :-** दृष्टि का विषय अभेद आत्मा था। दृष्टिने अभेद आत्मा का आश्रय किया और अनुभव हुआ। अनुभूति में द्रव्य, गुण और पर्याय-चेतनद्रव्य, चैतन्यगुण ऐसा भेद भी छूट गया, कर्ता-कर्म का भेद भी विलीन हो गया, ज्ञाता-ज्ञेय, ध्याता-ध्येय सब भेद छूट गये। चिन्मात्र आत्मा ऐसा उसे अनुभव हुआ। तो वह शुद्धनय का विषय कहें। शुद्धनय का विषय कहें तो वह आलम्बन का विषय कहें तो वह सही है कि नहीं?

**समाधान :-** आलम्बन का विषय मुख्यरूपसे एक द्रव्य है। यह सब उसके वेदन में है। चिन्मात्र है। भले वह शुद्धनय का विषय कहा, यहाँ जो स्वानुभूति का शुद्धनय कहने में आता है वह परिणति सहित को शुद्धनय कहो या स्वानुभूति कहो, सब ऐसा कहकर कहने में आता है कि वह शुद्धनय। और अकेले द्रव्य का आश्रय करके शुद्धनय कहने में आता है कि द्रव्य को ही विषय करता है, शुद्धनय दृष्टि का विषय है, वह दूसरे प्रकारसे है और यह परिणति सहित जो शुद्धनय है, इसप्रकार उसे स्वानुभूति कहो या शुद्धनय कहो या सबकुछ ऐसे कहने में आता है। उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय अभेद यानी उसे चिन्मात्र, अकेला चैतन्यमात्र रह गया यानी उसमें द्रव्य और पर्याय कुछ नहीं है और अकेला द्रव्य रह गया ऐसा नहीं है। उसमें गुण-पर्याय सब है और ज्ञान में सब ज्ञात होता है। विषय तो जैसा है वैसा ही है। विषय छूट नहीं जाता। जो मुख्यरूपसे द्रव्य है वह वैसे ही है और गुणों और पर्याय सब उसे जैसे हैं वैसा उसे वेदन में आता है। चिन्मात्र है। अकेला चिन्मात्र चिन्मात्र हो गया यानी वह चिन्मात्र-अकेला चैतन्यरूप है। उसमें दूसरे विभाव का रूप नहीं है, विकल्प का रूप नहीं है, कुछ नहीं

है। अकेला द्रव्य और उसके अनन्त गुण और उसकी पर्यायें, अकेला चैतन्य ही है इसलिये चिन्मात्र कहने में आता है।

सिद्ध भगवान अकेले चैतन्यरूप परिणमित हो गये, पूर्ण वीतरागरूप परिणमित हो गये। तो उसमें उनके द्रव्य, गुण और पर्यायें सबकुछ है। उसमें अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें, अनन्त आनन्द आदि सब है। लेकिन वह सब शुद्धनय का विषय कहने में आता है। लेकिन वह शुद्धनय परिणतिपूर्वक का कहने में आता है। उसकी दृष्टि का विषय तो एक द्रव्य का ही आश्रय है। सब शुद्ध हो गया इसलिये वह शुद्धनय है ऐसा कहने में आता है।

**प्रश्न :-** माताजी! उसका यह अर्थ हुआ कि शुद्धनय का विषय तो हुआ, फिर भी दृष्टि का विषय और यह शुद्धनय का विषय जो अभी हुआ, उसमें अन्तर है। दृष्टि का विषय तो केवल ज्ञायक कि जो अनन्त गुण का पिण्ड एक अभेद आत्मा है।

**समाधान :-** अकेला अभेद आत्मा है। उसमें उसे जो स्वानुभूतिरूपसे वेदन होता है वह विशेषरूपसे होता है। सविकल्प दशा में वह स्वानुभूति नहीं है। उसे अमुक प्रकारसे स्थिरता है, लीनता है, समाधि है। स्वानुभूति में विशेष होती है। और वह उसे ज्ञान में सब ज्ञात होता है। जानने का कार्य ज्ञान करता है, दृष्टि एक ध्येय रखती है। एक वस्तु को ध्येय में रखती है कि वस्तु मुख्य असली स्वरूप क्या है, उसे ध्येय में, दृष्टि एक ध्येय में रखती है और सब जानने का कार्य ज्ञान का है। ज्ञान दृष्टि को जानता है, ज्ञान स्वयं को जानता है, ज्ञान सब गुणों को जाने, ज्ञान सभी पर्यायोंको जाने, सब ज्ञान करता है।

**प्रश्न :-** माताजी! उसका अर्थ यह हुआ कि ... दृष्टि के विषय को ध्येय बनाकर एकाग्रता का प्रयत्न करे उसमें जबतक द्रव्य, गुण और पर्याय ऐसा भेद भी लक्ष्य में रहे तबतक उसे एकाग्रता नहीं होती। अर्थात् एक जाननेवाला ही है, जबतक ज्ञान में भी ऐसा अनुभव नहीं होता, एक जाननेवाला है उस रूप, तबतक उसमें भेद पड़ते हैं और भेद पड़ते हैं इसलिये अनुभव नहीं हो सकता। तो उसका अर्थ यह हुआ कि दृष्टि में ज्ञायक ध्रुव को लेकर ज्ञान में भी उसे अभेद अनुभव करने का प्रयत्न करना, एक जाननेवाला ही है, इसप्रकार ज्ञान में अभ्यास नहीं करे वह अलग बात है, भेद करके अभ्यास न करे, द्रव्य-गुण-पर्याय सब भेदों को जैसा है वेसा जान लिया, लेकिन अब वह अनुभवने का काल अथवा ध्यान का काल है तब तो ज्ञान में भी यह एक ज्ञान ही है..

**समाधान :-** भेद पड़े, द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद पड़े, वह भेद विकल्प जो पड़ते हैं वह राग के कारण पड़ते हैं। ज्ञान को जानना नहीं छोड़ना है, राग के कारण भेद पड़ते हैं, उस रागसे छूटे तो वह राग, विकल्प छूट जाते हैं। जानना नहीं छूटता। यह गुण है और यह गुणी है, ऐसा भेद रागमिश्रित ज्ञान है इसलिये ऐसा भेद उसमें आता है कि मैं यह ज्ञायक हूँ, यह पर्याय है, यह अधूरी पर्याय, इतनी साधक की पर्याय, यह राग की पर्याय, यह भेदज्ञान की धारा वर्तती है, ये सब जो ज्ञान में जानने में आता है, वह ज्ञान का जानने का मैं छोड़ दूँ, ऐसे नहीं। राग छूट जाये तो सहज ही ज्ञान का रागमिश्रितपना है वह छूट जाता है। ज्ञान का जो जानने का है वह गुण और पर्यायको जानना तो स्वानुभूति में भी रहता ही है। वह जानना नहीं छूटता, लेकिन राग छूट जाता है। दृष्टि का विषय एक द्रव्य का आलम्बन किया, उसका आश्रय किया, उसका आश्रय किया फिर ज्ञान में भी यह सब एक ही ध्यान में ले ऐसा नहीं है। रागसे छूटकर स्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न करता है। यह जानूँ नहीं ऐसे नहीं, ये राग की जो अस्थिरता होती है उपयोग बाहर जानेसे, कभी कोई विकल्प आता है, कभी कोई विकल्प आता है, राग के कारण, द्वेष के कारण अनेक प्रकार के शुभ विकल्प भी आते हैं, अनेक जानने के विकल्प आते हैं, उस विकल्पसे छूटकर बस, अब बहुत हुआ, अब मैं मेरे स्वरूप में स्थिर हो जाऊँ। इसलिये स्वयं को दृष्टि के विषय में यह आत्मा जो है उस एक को ध्येय किया, उस ध्येय में स्थिर हो जाऊँ।

विकल्पसे छूटना चाहता है। विकल्पसे छूटे उसमें उसे सहज ही जानना (होता है), भेदरूप खण्ड खण्ड जानता है वह सहज ही छूट जाता है। रागसे छूटता है इसलिये रागमिश्रित जानना छूट जाता है। लेकिन जब अन्दर जाता है वहाँ विकल्प छूट जाते हैं। निर्विकल्प दशा में उसका जानना छूट नहीं जाता। जानना जो होता है उसे छोड़ने का प्रयत्न नहीं लेकिन रागसे छूटने का प्रयत्न है। जानना नहीं छूटता। जानना छूटे तो शून्यता हो जाये। जानना नहीं छूटता लेकिन रागसे छूटकर और आकुलव्याकूल होता था वह स्वरूप में स्थिर होता है। यह आत्मा है वही मैं हूँ, बाकी कुछ भी मैं नहीं, यह आत्मा ही सुखरूप है। ऐसा विकल्प नहीं, सहज ही उसे आत्मा में शान्ति लगती है। बाहर के अनेक प्रकार के रागमिश्रित विकल्पसे छूटकर, यह गुण है, यह गुणी है, ये सब श्रुत की उपाधि कही जाती है। श्रुत की जो उपाधि है उससे भी छूटकर, विकल्प सहित है इसलिये रागमिश्रित है, इसलिये वह ज्ञान नहीं छूटता, राग छूट जाता है। अन्दर स्थिर होता है इसलिये अन्दर में आकूलतासे छूटकर स्वरूप में लीन होता है इसलिये विकल्प छूट जाते हैं। विकल्प छूट जाते हैं इसलिये स्वरूप की स्वानुभूति में स्वयं को जानता है, गुणों को जानता है, अपने आनन्द को जानता है, सब को जानता है। इसप्रकार भेद करके विकल्प करके नहीं जानता, सहज ही जानने में आता है।

कहते हैं न, श्रुत की उपाधि को भिन्न जानिये। उपाधि यानी रागमिश्रित है इसलिये उससे छूटता है। जो कोई द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार है, शुक्लध्यान होता है तो द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार होते हैं तो भी उसमें वह रागमिश्रित है। इसलिये उसमें भी खण्ड खण्ड होता है, इसलिये अधिक स्थिर होता है। फिर एक पर स्थिर होता है। फिर जब ऐसा शुक्लध्यान जमता है तब उसे केवलज्ञान प्रगट होता है। उसमें ज्ञान नहीं छूटता, लेकिन राग छूटता है। वीतराग दशा की प्राप्ति होती है इसलिये केवलज्ञान प्राप्त होता है। राग छूटकर वीतरागता होती है उसके साथ ज्ञान को सम्बन्ध है, ज्ञान निर्मल होता है। जब स्वानुभूति में जाता है तब उसका ज्ञान निर्मलता को प्राप्त होता है। जितने अंश में वीतरागता होती है उतने अंश में ज्ञान निर्मल होता है।

बाहर में क्षयोपशम ज्ञान खण्ड खण्ड होता है। एक-एक ज्ञेय को जानने के लिये रुकता है। इसलिये उसपर ध्यान देने के बजाय रागसे छूटना। अपनी आसक्ति के कारण स्वयं कहीं न कहीं रुकता है। आगे बढ़ नहीं पाता। पहले श्रुत के विचार जानने के लिये सब आते हैं। ज्ञानस्वभाव आत्मा का निर्णय करके फिर मति-श्रुत का उपयोग अन्दर ले जाता है। इसलिये बाहर जो उपयोग जाता था उस उपयोग को अपने स्वरूप में लीन करता है। इसलिये जानना छोड़ दूँ ऐसे नहीं, उपयोग पलटता है। जो उपयोग रागमिश्रित उपयोग बाहर जाता है उस उपयोग को स्वसन्मुख होकर, मैं यह चैतन्य ही हूँ, फिर गुणभेद के, पर्यायभेद के या अल्प-पूर्ण पर्याय के किसी भी प्रकार के विचार नहीं करके स्वरूप में स्थिर होता है। उसे वह आकूलता लगती है। मेरे स्वरूप में मैं स्थिर होऊँ। इसलिये उसे विचार करना और वह सब जानना सहज ही छूट जाता है। रागमिश्रित है इसलिये सहज ही छूट जाता है। और स्वरूप जो दृष्टि का ध्येय है उसप्रकारसे खुद उसमें स्थिर होता है, उसमें जम जाता है। पहले उसने दृष्टि को विषय किया था, जो आत्मा का विषय करती है कि यह स्वरूप है वही मैं हूँ, उसे ध्येय में रखा कि चाहे कोई भी कार्य हो उसमें ध्येय को चूकना नहीं है। आत्मा का आश्रय नहीं छोड़ता। आश्रय नहीं छोड़ता और फिर अधिक आगे बढ़कर उसमें स्थिर हो जाता है। राग की आकूलतासे अन्दर स्थिर हो जाता है। इसलिये स्थिर होने के कारण विकल्प छूट जाते हैं। इसलिये जानने के लिये जो चारों ओर उपयोग घुमता था वह उपयोग अपने स्वरूप में जाता है। सहज ही उपयोग को पलटता है।





१९२

बंबई, पौष सुदी १४, शुक्र, १९४७

आयुष्यमान भाई,

आज आपका एक पत्र मिला।

आपको किसी भी प्रकारसे पूर्वापर धर्मप्राप्ति असुलभ हो इसलिये कुछ भी न करनेके लिये आज्ञा दी थी; तथा अन्तिम पत्रमें सूचित किया था कि अभी इस विषयमें कोई व्यवस्था न करें। यदि जरूरत पड़ेगी तो तत्सम्बन्धी कुछ करनेके लिये इस तरह लिखूँगा कि जिससे आपको पूर्वापर असमाधि न हो। वह वाक्य यथायोग्य समझमें आया होगा। तथापि कुछ भक्तिदशानुयोगसे ऐसा किया मालूम होता है।

कदाचित् आपने इतना भी न किया होता तो यहाँ आनन्द ही था। प्रायः ऐसे प्रसंगमें भी दूसरे प्राणीको दुःखी करनेका न होता हो तो आनन्द ही रहता है। यह वृत्ति मोक्षाभिलाषीके लिये तो बहुत उपयोगी है, आत्मसाधनरूप है।

सत्को सत्‌रूपसे कहनेकी जिसकी निरन्तर परम अभिलाषा थी ऐसा महाभाग्य कबीरका एक पद इस विषयमें स्मरण करने योग्य है। यहाँ एक उसकी मूर्द्धन्य कड़ी लिखी है-

**“करना फकीरी क्या दिलगीरी, सदा मगन मन रहेना जी।”**

मुमुक्षुओंको इस वृत्तिको अधिकाधिक बढ़ाना उचित है। परमार्थचिन्ता होना यह एक अलग विषय है; व्यवहारचिन्ताका वेदन अनन्तरसे कम करना, यह मार्गप्राप्तिका एक साधन है।

आपने इस बार मेरे प्रति जो कुछ किया है, वह एक अलग ही विषय है, तथापि विज्ञापन है कि किसी भी प्रकारसे आपको असमाधिरूप जैसा मालूम हो तब इस विषयमें यहाँ लिख भेजना जिससे योग्य व्यवस्था करनेका यथासम्भव प्रयास होगा।

अब इस विषयको इतनेसे यहाँ छोड़ देता हूँ।

हमारी वृत्ति जो करना चाहती है, वह निष्कारण परमार्थ है, तत्सम्बन्धी आप बारंबार जान सके हैं; तथापि कुछ समवाय कारणकी न्यूनताके कारण अभी तो वैसा कुछ अधिक नहीं किया जा सकता। इसलिये अनुरोध है कि हम अभी कोई परमार्थज्ञानी हैं अथवा समर्थ हैं ऐसी बात प्रसिद्ध न करें; क्योंकि यह हमें वर्तमानमें प्रतिकूल जैसा है।

आप जो समझे हैं वे, मार्गको सिद्ध करनेके लिये निरन्तर सत्पुरुषके चरित्रका मनन करते रहें। प्रसंगात् वह विषय हमें पूछें। सत्शास्त्र, सत्कथा और सद्ब्रतका सेवन करें।

वि. निमित्तमात्र



ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अप्रैल-२०१९) का शुल्क एक मुमुक्षु, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

१८८

बंबई, पोष सुदी २, १९४७

कहनेरूप जो मैं उसे नमस्कार हो।  
सर्व प्रकारसे समाधि है।



१८९

बंबई, पोष सुदी ५, गुरु, १९४७

अलखनाम धुनि, लगी गगनमें, मगन भया मन मेरा जी।  
आसन मारी सुरत दृढ धारी, दिया अगम घर डेरा जी॥  
दरश्या अलख देदारा जी।



१९०

बंबई, पोष सुदी ९, १९४७

चि. त्रिभोवनका लिखा पत्र कल मिला। आपको हमारे ऐसे व्यवहारिक कार्य-कथनसे भी विकल्प न हुआ, इसके लिये सन्तोष हुआ है। आप भी सन्तोष ही रखिये।

पूर्वापर असमाधिरूप हो उसे न करनेकी शिक्षा पहले भी दी है। और अब भी यही शिक्षा विशेष स्मरणमें रखने योग्य है। क्योंकि ऐसा रहनेसे भविष्यमें धर्मप्राप्ति सुलभ होगी।

जैसे आपको पूर्वापर असमाधि प्राप्त न हो वैसे आज्ञा होगी। चुनीलालका द्वेष क्षमा करने योग्य है। समय समयपर कुंवरजीको पत्र लिखते रहिये; क्योंकि वे पत्र लिखनेके लिये लिखते हैं।

वि. रायचन्दके यथायोग्य।



१९१

बंबई, पोष सुदी १०, सोम, १९४७

महाभाग्य जीवन्मुक्त,

आपका कृपापत्र आज एक मिला। उसे पढ़कर परम सन्तोष हुआ।

प्रश्नव्याकरणमें सत्यका माहात्म्य पढ़ा है। मनन भी किया था। अभी हरिजनकी संगतिके अभावसे काल कठिनतासे बीतता है, हरिजनकी संगतिमें भी उसकी भक्ति करना बहुत प्रिय है।

आप परमार्थके लिये जो परम आकांक्षा रखते हैं, वह ईश्वरेच्छा होगी तो किसी अपूर्व रास्तेसे पूरी होगी। जिन्हें भ्रान्तिसे परमार्थका लाभ मिलना दुर्लभ हो गया है, ऐसे भारतक्षेत्रवासी मनुष्योंपर वह परमकृपालु परमकृपा करेगा; परन्तु अभी कुछ समय तक उसकी इच्छा हो, ऐसा मालूम नहीं होता।



(अनुसंधान पृष्ठ सं.१८ पर...)

